बिरसा एवं ताना भगत आन्दोलन

[BIRSA AND TANA BHAGAT MOVEMENTS]

छोटा नागपुर (वर्तमान झारखण्ड) में अंग्रेजी का प्रवेश 1760 ई. के दशक में प्रारम्भ हुआ।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1760 ई. में मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया और मिदनापुर तथा अन्य परगनों से कर वसूलने की जिम्मेदारी दी। मुगल वादशाह शाह आलम द्वितीय ने 1765 ई. में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी भी अंग्रेजों को सौंप दी, तब झारखण्ड विहार का ही हिस्सा था।

झारखण्ड में उस समय दो तरह के क्षेत्र थे—जंगलमहल और राजमहल। जंगलमहल के अन्तर्गत झारखण्ड के वे क्षेत्र आते थे, जिनके नामों के अन्त में भूम जुड़ा था। मानभूम, दालभूम, सिंहभूम, वीरभूम इत्यादि। अंग्रेजों के आगमन (1805) के पूर्व जंगलमहल का अस्तित्व था। ऐसे क्षेत्रों में बंगाल, विहार और उड़ीसा के शासकों का हस्तक्षेप नहीं हो सका था, क्योंकि इन क्षेत्रों में घने और दुर्गम जंगल थे। लम्बे-लम्बे और घने वृक्षों वाले क्षेत्रों में आदिवासियों का स्वायत्त शासन था। सुदूर और दुर्गम क्षेत्र में बाहरी लोगों का पहुंचना बहुत कठिन था। जंगलमहल के ऐसे क्षेत्रों में—संथाल, भूमिज, कुरमी (महतो), लोध, माझी, कोल, बेदिया आदि रहते थे। यहां के प्रधान को राजा जैसा सम्मान प्राप्त था। आदिवासी समुदाय के सरदारों को 'पैक सरदार' कहा जाता था। अंग्रेजों की इन सरदारों के बारे में गलत धारणाएं बन गई थीं। आपसी तालमेल के अभाव तथा परिस्थिति और परिवेशजन्य विवशताओं और संवादहीनता के कारण ऐसी गलतफहमियां पनपीं होंगी। आदिवासी सरदारों को जंगल में रहने की मजबूरी थी, लेकिन उनकी स्थिति समझकर उन्हें 'विद्रोही लुटेरा' तक कहा गया और सरदारों के साथ रहने वालों को 'चुआर' कहा गया।

1767 ई. में अंग्रेज, सैनिक बल भेजकर जंगलमहल क्षेत्र के जमींदारों आदि से टैक्स वसूलने लगे। अंग्रेजों को इस बात की भनक मिल गई थी कि वहां के जमींदार प्रजा का शोषण करके धनी बनते जा रहे हैं। दालभूम के राजा ने कर देने से इन्कार किया और अंग्रेज सैनिकों के आने का भी विरोध किया। अंग्रेज शासकों के प्रतिनिधि फर्गुसन को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा और जब वह किले तक पहुंचा, किला जल चुका था और राजा भाग चुका था। फर्गुसन ने राजा का पीछा किया और बन्दी बनाकर मिदनापुर जेल में डाल दिया। बाद में राजा के भतीजे ने जब कर देने का वायदा किया, तब राजा को छोड़ दिया गया और राज्य भी दे दिया गया, लेकिन 5,500 ₹ का कर बहुत भारी पड़ रहा था, अतः भतीजे को भी भागना पड़ा। इस तरह विद्रोह की शुरुआत हो गई।

वास्तव में, कम्पनी के विरुद्ध असन्तोष, कम्पनी की नींव पड़ने के साथ ही व्याप्त हो गया था, क्योंकि स्थानीय लोग विदेशी शासन को पूर्णतः नापसन्द करते थे।

अंग्रेजों ने आदिवासियों की शासन पद्धति और परम्परागत अधिकारों इत्यादि पर हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इससे आदिवासी समुदाय को धक्का लगा। उनके प्रति अंग्रेजों की गलत धारणा ने भी उन्हें दुःखी किया। आदिवासियों की भाषागत कठिनाई से अंग्रेजों से सीधे सम्पर्क में मुश्किलें आती थीं, अतः गलत धारणाएं पनपने में बाहर से आए लोगों ने बड़ी भूमिका निभाई। अच्छी-अच्छी जमीन और खेत जमींदारों के पास थे और आदिवासियों को जंगल में रहना पड़ता था। जमींदारों ने अंग्रेजों के मन में गलतफहमियां बढ़ाई कि आदिवासी अपराधी प्रकृति के हैं। आदिवासियों पर अत्याचार होता था, मुकदमे चलाए जाते थे। आदिवासियों की प्रतिक्रिया को विद्रोह मान लिया गया। अंग्रेज भी जमींदारों का साथ देने लगे, यह देखकर आदिवासी

Scanned with OKEN Scanner

निराश हो गए। अंग्रेजों ने आदिवासियों की इस प्रतिक्रिया को 'चुआर विद्रोह' माना, जब अत्याचार बर्दाश्त से बाहर हो गया, तब मानभूम, पटभूम, वीरभूम और ढालभूम के जंगलों में इनका जमावड़ा हुआ और लगभग 5,000 चुआरों ने अंग्रेजों के हिमायती घाटशिला के जमींदार पर आक्रमण कर दिया। परिणाम यह हुआ कि जो अंग्रेज सैनिक वहां मौजूद थे, उन्हें भी शिविर छोड़कर नरसिंहगढ़ के किले में शरण लेनी पड़ी। अंग्रेजों ने कैप्टन फीर्बस और लेफ्टिनेंट नन के साथ सैनिकों की पांच टुकड़ियां इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजीं, तभी शान्ति स्थापित हो सकी।

कम्पनी शासन के विरुद्ध व्याप्त असन्तोष के कई कारण थे। मराठा आक्रमणों, विभिन्न राजाओं एवं जमींदारों द्वारा फैलाई गई गड़बड़ियों और बार-बार सैनिकों के आवागमन से अधिकांश क्षेत्र उजड़ गए थे। 1770, 1777 तथा 1800 ई. के अकाल एवं प्राकृतिक आपदा ने लोगों का कष्ट दुगना कर दिया था। आर्थिक कठिनाई एवं अन्नाभाव के कारण जनता का विद्रोह स्वाभाविक था।

व्यापक असन्तोष का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण बकाया मालगुजारी के नाम पर किसानों की जमीन और जमींदारों की जमींदारी छीनना था। राजस्व वसूली के लिए बार-बार फौज का उपयोग रैय्यतों एवं जमींदारों के क्रोध का कारण बनता जा रहा था। प्रशासनिक पदों पर गैर-छोटा नागपुरी पदाधिकारियों की नियुक्ति, धीमी सरकारी न्याय प्रक्रिया तथा सरकारी आदेश अनुपालन हेतु फौज का उपयोग असन्तोष का कारण बन गए थे। जनजातियों में असन्तोष का कारण उनकी सभ्यता एवं संस्कृति पर अस्मिता का खतरा था।

संथालों के आर्थिक शोषण ने सभी सीमाएं पार कर दीं तथा वह असहनीय हो गया। ऐसे समय में स्थितियों की मांग को देखते हुए कान्हू तथा सिद्धू मुर्मू जैसे दो साहसी व्यक्ति सामने आए। अपेक्षित एवं आवश्यक नेतृत्व की सहायता से संथाल विशाल आन्दोलन के लिए तैयार हो गए। जून 1885 में हजारों संथालों ने एकत्र होकर अपने आपको शोषण के बोझ से मुक्ति दिलाने की शपथ ली। सभी बाहरी तत्वों विशेषतया सरकारी कर्मचारियों, जमींदारों, साहूकारों तथा अंग्रेजों को तुरन्त उनके क्षेत्रों से चले जाने तथा अपनी जान बचाने की चेतावनी दी गई।

झारखण्ड के संथाल परगना क्षेत्र में जनजातियों में रहने वाले संथाल सबसे नए थे। वीरभूम, ढालभूम, सिंहभूम, मानभूम तथा बासूड़ा के जमींदारों द्वारा सताए गए संथालों ने 1790 ई. से ही यहां आकर बसना शुरू कर दिया था। 1815-30 ई. के बीच ये बड़ी संख्या में यहां आकर बस गए। 1818 ई. तक गोड्डा क्षेत्र में उनके अनेक गांव बस चुके थे। 1836 ई. में दामिन-कोह में संथाल गांवों की संख्या 427 तक जा पहुंची। पहाड़िया जनजाति के लोगों ने उनका यहां कोई विरोध नहीं किया।

1855-56 में घटित संथाल विद्रोह मुख्य रूप से आर्थिक कारणों के चलते हुआ। वहाबी तथा अन्य जनजातीय विद्रोहों से प्रेरणा ग्रहण कर संथाल परगनों जिलों की संथाल जाति ने अंग्रेजों तथा उनके पिट्ठुओं (दीकुओं) को अपने गुस्से का निशाना बनाया। इस विद्रोह से वीरभूम, भागलपुर, राजमहल (दामिनकोह), सिंहभूम, बांकुरा और मुंगेर के क्षेत्र प्रभावित हुए। इस विद्रोह का केन्द्र भगिनीडीह नामक गांव रहा।

इस उत्पीड़न और अत्याचार का विरोध करते हुए चार संथाल भाईयों—**सिद्धू, कान्हू, चांद** तथा **भैरव** ने आदिवासियों का आह्वान किया कि वे अपने प्रदेश को अपने हाथों में ले लें और अपनी सरकार स्थापित करें। इनके नेतृत्व में 10 हजार से भी अधिक संथाल एकत्रित हो गए। संथाल विद्रोहियों ने भागलपुर और राजमहल के बीच डाक और रेल सेवाएं काट दीं। सूदखोरों, जमींदारों, गोरे बागान मालिकों, रेलवे इंजीनियरों और अंग्रेज अधिकारियों के घरों पर हमले किए। यह विद्रोह 1856 ई. तक चलता रहा। अंग्रेजों के साथ इस खुली जंग का अन्त विद्रोही नेताओं के पकड़ में आने के बाद ही हुआ और साम्राज्यवाद ब्रिटिश शक्ति ने संथाल विद्रोह को निर्ममतापूर्वक कुचल दिया। इस क्रूरतापूर्ण दमनात्मक कार्यवाही में अंग्रेजों को स्थानीय जमींदारों, सूदखोरों (महाजनों) व राजे-रजवाड़ों का पूरा सहयोग मिला। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप 1855 ई. का रेगुलेशन XXXVIII पारित हुआ। 1858 ई. के पुलिस नियमों द्वारा ग्राम के मुखिया लोगों को पुलिस की शक्तियां प्रदान की गईं।

Scanned with OKEN Scanner

इस विद्रोह के पहले चरण में बहुत से साहूकारों तथा पुलिस अफसरों को मारा गया। इसके पश्चात् बाहरी लोगों की दुकानों की तोड़-फोड़ की गई तथा उन्हें लूटा गया। रोके जाने पर संथालों ने अपनी तलवारें शस्त्रों तथा जहरीले तीरों का प्रयोग किया। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए प्रशासन ने शान्तिपूर्ण ढंग से समस्या का समाधान करने का प्रयास किया। संथालों ने अंग्रेजी सरकार के कार्यालयों में तोड़-फोड़ की। अंग्रेज महिलाओं तथा बच्चों को चुन-चुन कर मारा तथा अंग्रेज सरकार की भारतीय कठपुतलियों के सभी संस्थानों पर आक्रमण किया। अन्ततः इस विद्रोह को दबाने का कार्य सेना को सौंपा गया। सेना ने अनेक संथाल गांवों को लूटा व उनमें आग लगा दी। इन लोगों ने उन सभी चीजों पर हमला किया, जो दिकू (गैर-आदिवासी) और उप-निवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे। कुछ समय पश्चात् संथाल विद्रोह के सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए तथा 1856 ई. के अन्त तक यह विद्रोह लगभग समाप्त हो गया।

बिरसा आन्दोलन
(BIRSA MOVEMENT)

सभी प्रकार के शोषणों तथा अत्याचारों के विरुद्ध बिरसा मुण्डा विद्रोह भी जनजातीय आक्रोश का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मुण्डा जनजाति छोटा नागपुर क्षेत्र की मुख्य जनजातियों में से एक है, जो जनसंख्या के दृष्टिकोण से भी भारत की महत्वपूर्ण जनजातियों में गिनी जाती है। जनजातियों में मुण्डा ही सबसे अधिक शोषित वर्ग थे। ऐसी स्थिति में बिरसा मुण्डा का प्रादुर्भाव हुआ। बिरसा ने उन्हें एक नया धर्म, जीवन दर्शन और आचार संहिता प्रदान किया। बिरसा मुण्डा विद्रोह के कई कारण थे।

बढ़ती हुई जनसंख्या में कृषि योग्य भूमि की अधिक आवश्यकता हुई, जिसके फलस्वरूप राजस्व भी बढ़ गया। ऐसी स्थितियों में साहूकारों ने इनकी विवशता का अधिक-से-अधिक लाभ उठाया। 1806 ई. में अंग्रेज प्रशासकों ने जमींदारों को पुलिस के सभी अधिकार दे दिए, जिससे उनका शोषण और अत्याचार बढ़ गया। 1881-1895 ई. के मध्य ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कई छोटे-बड़े आन्दोलन हुए। सरकार द्वारा इनका दमन कठोरता के साथ कर दिया गया। फिर भी आदिवासी समुदाय का असन्तोष समाप्त नहीं हुआ। बिरसा मुण्डा के नेतृत्व वाले मुण्डा विद्रोह के रूप में अंग्रेजों को सबसे असरकारी और संगठित विद्रोह का सामना करना पड़ा।

1895 से 1901 ई. के बीच चला यह विद्रोह रांची जिले के दक्षिणी क्षेत्र खूंटी से शुरू हुआ। इस विद्रोह के नायक रांची जिलान्तर्गत तमार थाना के जलकद गांव का युवक बिरसा मुण्डा थे।

बिरसा नाम के इस बीस वर्षीय साहसी व उत्साही मुण्डा युवक की शिक्षा एक मिशन स्कूल में हुई थी तथा बाद में बिरसा वैष्णव धर्म के अनुयायी एक मुनि के साथ रहने लगा था। मुण्डा जनजाति को बाहरी तत्वों से मुक्ति दिलाने तथा उनके उत्थान के लिए उसे भगवान ने भेजा है। इस मिथक के प्रचार में बिरसा के कुछ मित्रों ने भी उसका सहयोग दिया। उसने सम्पूर्ण छोटानागपुर क्षेत्र में इस प्रकार की घोषणाएं कीं। उसके व्याख्यानों तथा भाषणों में हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म तथा मुण्डा राजनीतिक, तीनों का मिश्रण था। उसने मुण्डा लोगों को परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों को तिलांजलि देकर ईश्वर में विश्वास करने की बात समझाई। अधिकतर मुण्डाओं को यह बात समझ में आ गई, क्योंकि वह लोग अपनी परम्पराओं को निभाने में पशुओं की बलि देने जैसी महंगी रीतियों से ग्रस्त थे। मिशनरियों की ही भांति बिरसा ने प्रार्थना सभाओं का भी आयोजन किया। इन सभाओं में वह अपनी जनजाति के लोगों से न डरने तथा साहस का परिचय देने की अपील करता था। बिरसा उन्हें समझाता था कि उसकी मानवेत्तर शक्तियों के कारण कोई भी लौकिक शस्त्र उन्हें नहीं मार सकता।

1895 तक अपने अथक् प्रयासों से बिरसा ने छः हजार समर्पित मुण्डाओं का एक दल तैयार कर लिया। अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व को समाप्त करना, सभी बाहरी तथा विदेशी तत्वों को बाहर निकालना, स्वतन्त्र मुण्डा राज्य की स्थापना करना तथा विदेशी राज के समर्थक जमींदारों से मुक्ति पाना उसके मुख्य उद्देश्य थे। विद्रोह का प्रारम्भ एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार साहूकारों, मिशनरियों, अधिकारियों तथा सभी बाहरी लोगों पर आक्रमण द्वारा किया गया।

बिरसा के नेतृत्व में मुण्डाओं ने विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। मुण्डा विद्रोह से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने 24 अगस्त, 1895 को बिरसा को पुलिस डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट जी. आर. के. मेयर्स द्वारा गिरफ्तार कर लिया। दो वर्ष की सजा भुगतने के बाद महारानी विक्टोरिया के हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में 30 नवम्बर,

Scanned with OKEN Scanner

1897 को बिरसा को कैद से मुक्ति मिली। अंग्रेजों का विश्वास था कि जेल में रहने के पश्चात् बिरसा का प्रभाव और विद्रोही तेवर खत्म हो जाएगा, लेकिन जेल से बिरसा और अधिक कट्टर और साम्राज्यवाद विरोधी बनकर बाहर निकले। अब आदिवासियों के दुश्मनों के विरुद्ध जन-जागरण बिरसा मुण्डा के जीवन का लक्ष्य बन गया।

1898 ई. में **डोम्बारी पहाड़ी** से ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष की घोषणा हुई। बिरसा ने धर्मानुसार राज्य करने और उसके लिए ब्रिटिश अधिकारियों के खिलाफ आन्दोलन का विचार रखा।

25 दिसम्बर, 1899 में सिंहभूम के कोटागरा स्थान में बिरसा ने अपने विश्वासपात्र लोगों, मन्त्रियों और प्रतिनिधियों की विशेष सभा बुलाई, जिसमें 60 प्रमुख गुरु एकत्र हुए। इसी सभा में हिंसात्मक रूप से जमींदारों, अंग्रेजों के पिट्ठुओं तथा सरकारी कर्मचारियों का सफाया करने की योजना बनी। अंग्रेजों के विरुद्ध यह संघर्ष क्रिसमस की पूर्व संध्या पर 1899 ई. में आरम्भ हुआ। बिरसा के नेतृत्व में यह आन्दोलन खूंटी, रांची, सिंहभूम तमाड़, बसिया, चक्रधरपुर आदि स्थानों पर हुआ। इस संघर्ष का पहला शिकार उन ईसाई आदिवासियों को बनाया गया, जिन पर अंग्रेज परस्त होने का सन्देह था। **रांची** तथा **सिंहभूम** जिले इस आन्दोलन से सर्वाधिक प्रभावित हुए। बिरसा ने दोन्का मुण्डा एवं सोना मुण्डा को धार्मिक एवं सामाजिक मामलों का प्रमुख बनाया, जबकि गया मुण्डा को सेनापति नियुक्त किया। जोहन, रीढा, पंडु, टिपरु, डेमका तथा हायेराम मुण्डा को बिरसा ने सलाहकार के रूप में नियुक्ति दी। इस विद्रोह के समय रांची के उपायुक्त स्ट्रेट फील्ड थे।

9 जनवरी, 1900 ई. में शैल रकाब (रांची) पहाड़ी पर लड़े गए एक युद्ध में बिरसा को पराजित होना पड़ा और 3 फरवरी, 1900 को संतरा के पश्चिमी जंगल के भीतर बिरसा मुण्डा पुनः बन्दी बना लिए गए। उनके खिलाफ गोपनीय ढंग से मुकदमे की कार्यवाही की गई। सरकार से बगावत करने और आतंक व हिंसा फैलाने के आरोप में उनको रांची जेल में कैद कर लिया गया। मुकदमे में पैरवीं के लिए इनकी ओर से किसी प्रतिनिधि को अनुमति नहीं मिली। हैजा होने के कारण 9 जून, 1900 को जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। लगभग 350 मुण्डा विद्रोहियों पर मुकदमे चलाए गए, जिनमें से तीन को फांसी और 44 अन्य को आजीवन कारावास की सजा दी गई। 47 अन्य को भी कठोर दण्ड मिला और जल्दी ही इस आन्दोलन का अन्त हो गया। बिरसा आन्दोलन का मुख्यालय खूंटी था।

ऐसा समझना गलत होगा कि बिरसा मुण्डा आन्दोलन अप्रभावी सिद्ध हुआ। यह सत्य है कि सरकारी दमन के कारण बिरसा आन्दोलन को कुचल दिया गया, लेकिन बिरसा की आत्मा जीवित रही। इस आन्दोलन से आदिवासियों ने पहली बार अनुभव किया कि वे अपने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान राजनीतिक स्वतन्त्रता से प्राप्त कर सकते हैं। बिरसा आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1902 ई. में गुमला को एवं 1903 ई. में खूंटी को अनुमण्डल बनाया गया। 11 नवम्बर, 1908 ई. को छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम लागू किया गया।

बिरसा मुण्डा : एक परिचय

झारखण्ड के आन्दोलनकारियों द्वारा **भगवान** रूप में पूजे जाने वाले इस महान क्रान्तिकारी ने अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र हिंसक क्रान्ति का बिगुल फूंका। उन्होंने अंग्रेजों को मार भगाने का बीड़ा हिंसा द्वारा उठाया। फलतः वे अंग्रेजों के कोप भाजन बन गए। उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में ठूंस दिया गया और बाद में उनकी हत्या कर दी गई। बिरसा मुण्डा आन्दोलन एक उत्साहपूर्ण प्रयास था। सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण और विदेशी सत्ता के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों के प्रति यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। इससे उत्पन्न प्रेरणा आने वाले वर्षों में भी बनी रही। बिरसा मुण्डा का आन्दोलन एवं बलिदान भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक स्वर्णिम एवं महत्वपूर्ण अध्याय है, जो पूरे छोटा नागपुर क्षेत्र के आदिवासियों को देश की स्वतन्त्रता संग्राम की मुख्य धारा की ओर प्रवाहित करने तथा उसमें समर्पित एवं उत्सर्ग होने के लिए एक सही दिशा दी।

बिरसा मुण्डा आदिवासियों के **महानायक** ही नहीं, वे उनके भगवान भी थे। वस्तुतः वह अन्याय के प्रतिकार, सामाजिक समानता और स्वतन्त्रता की लड़ाई के प्रतीक थे। बिरसा मुण्डा का जन्म 15 नवम्बर, 1875 को रांची जिले के उलीहातु नामक गांव में मुण्डा आदिवासी सुगना के घर हुआ था। बृहस्पतिवार को

Scanned with OKEN Scanner

1897 को बिरसा को कैद से मुक्ति मिली। अंग्रेजों का विश्वास था कि जेल में रहने के पश्चात् बिरसा का प्रभाव और विद्रोही तेवर खत्म हो जाएगा, लेकिन जेल से बिरसा और अधिक कट्टर और साम्राज्यवाद विरोधी बनकर बाहर निकले। अब आदिवासियों के दुश्मनों के विरुद्ध जन-जागरण बिरसा मुण्डा के जीवन का लक्ष्य बन गया।

1898 ई. में **डोम्बारी पहाड़ी** से ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष की घोषणा हुई। बिरसा ने धर्मानुसार राज्य करने और उसके लिए ब्रिटिश अधिकारियों के खिलाफ आन्दोलन का विचार रखा।

25 दिसम्बर, 1899 में सिंहभूम के कोटागरा स्थान में बिरसा ने अपने विश्वासपात्र लोगों, मन्त्रियों और प्रतिनिधियों की विशेष सभा बुलाई, जिसमें 60 प्रमुख गुरु एकत्र हुए। इसी सभा में हिंसात्मक रूप से जमींदारों, अंग्रेजों के पिट्ठुओं तथा सरकारी कर्मचारियों का सफाया करने की योजना बनी। अंग्रेजों के विरुद्ध यह संघर्ष क्रिसमस की पूर्व संध्या पर 1899 ई. में आरम्भ हुआ। बिरसा के नेतृत्व में यह आन्दोलन खूंटी, रांची, सिंहभूम तमाड़, बसिया, चक्रधरपुर आदि स्थानों पर हुआ। इस संघर्ष का पहला शिकार उन ईसाई आदिवासियों को बनाया गया, जिन पर अंग्रेज परस्त होने का सन्देह था। **रांची** तथा **सिंहभूम** जिले इस आन्दोलन से सर्वाधिक प्रभावित हुए। बिरसा ने दोन्का मुण्डा एवं सोना मुण्डा को धार्मिक एवं सामाजिक मामलों का प्रमुख बनाया, जबकि गया मुण्डा को सेनापति नियुक्त किया। जोहन, रीढा, पंडु, टिपरु, डेमका तथा हाथेराम मुण्डा को बिरसा ने सलाहकार के रूप में नियुक्ति दी। इस विद्रोह के समय रांची के उपायुक्त स्ट्रेट फील्ड थे।

9 जनवरी, 1900 ई. में शैल रकाब (रांची) पहाड़ी पर लड़े गए एक युद्ध में बिरसा को पराजित होना पड़ा और 3 फरवरी, 1900 को सेंतरा के पश्चिमी जंगल के भीतर बिरसा मुण्डा पुनः बन्दी बना लिए गए। उनके खिलाफ गोपनीय ढंग से मुकदमे की कार्यवाही की गई। सरकार से बगावत करने और आतंक व हिंसा फैलाने के आरोप में उनको रांची जेल में कैद कर लिया गया। मुकदमे में पैरवीं के लिए इनकी ओर से किसी प्रतिनिधि को अनुमति नहीं मिली। हैजा होने के कारण 9 जून, 1900 को जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। लगभग 350 मुण्डा विद्रोहियों पर मुकदमे चलाए गए, जिनमें से तीन को फांसी और 44 अन्य को आजीवन कारावास की सजा दी गई। 47 अन्य को भी कठोर दण्ड मिला और जल्दी ही इस आन्दोलन का अन्त हो गया। बिरसा आन्दोलन का मुख्यालय खूंटी था।

ऐसा समझना गलत होगा कि बिरसा मुण्डा आन्दोलन अप्रभावी सिद्ध हुआ। यह सत्य है कि सरकारी दमन के कारण बिरसा आन्दोलन को कुचल दिया गया, लेकिन बिरसा की आत्मा जीवित रही। इस आन्दोलन से आदिवासियों ने पहली बार अनुभव किया कि वे अपने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान राजनीतिक स्वतन्त्रता से प्राप्त कर सकते हैं। बिरसा आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1902 ई. में गुमला को एवं 1903 ई. में खूंटी को अनुमण्डल बनाया गया। 11 नवम्बर, 1908 ई. को छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम लागू किया गया।

बिरसा मुण्डा : एक परिचय

झारखण्ड के आन्दोलनकारियों द्वारा **भगवान** रूप में पूजे जाने वाले इस महान क्रान्तिकारी ने अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र हिंसक क्रान्ति का बिगुल फूंका। उन्होंने अंग्रेजों को मार भगाने का बीड़ा हिंसा द्वारा उठाया। फलतः वे अंग्रेजों के कोप भाजन बन गए। उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में ठूंस दिया गया और बाद में उनकी हत्या कर दी गई। बिरसा मुण्डा आन्दोलन एक उत्साहपूर्ण प्रयास था। सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण और विदेशी सत्ता के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों के प्रति यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। इससे उत्पन्न प्रेरणा आने वाले वर्षों में भी बनी रही। बिरसा मुण्डा का आन्दोलन एवं बलिदान भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक स्वर्णिम एवं महत्वपूर्ण अध्याय है, जो पूरे छोटा नागपुर क्षेत्र के आदिवासियों को देश की स्वतन्त्रता संग्राम की मुख्य धारा की ओर प्रवाहित करने तथा उसमें समर्पित एवं उत्सर्ग होने के लिए एक सही दिशा दी।

बिरसा मुण्डा आदिवासियों के **महानायक** ही नहीं, वे उनके भगवान भी थे। वस्तुतः वह अन्याय के प्रतिकार, सामाजिक समानता और स्वतन्त्रता की लड़ाई के प्रतीक थे। बिरसा मुण्डा का जन्म 15 नवम्बर, 1875 को रांची जिले के उलीहातु नामक गांव में मुण्डा आदिवासी सुगना के घर हुआ था। बृहस्पतिवार को

Scanned with OKEN Scanner

जन्म लेने के कारण इनका नाम 'बिरसा' रखा गया और मुण्डा इनकी जाति थी। बिरसा को ब्रिटिश शासन से बाल्यावस्था से ही चिढ़ थी। आदिवासियों को शोषण से मुक्त कराना, धर्म की रक्षा करना, समाज में सैकड़ों वर्षों से पैठ चुकी कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष रोगियों की सेवा सुश्रुषा, निर्धनों एवं दुर्बलों की सहायता, पड़ोसियों के साथ मित्रता और पवित्र और निर्भीक रहना बिरसा के जीवन के कुछ लक्ष्य थे।

वर्ष 1820, 1832 और 1867 में आदिवासियों ने ब्रिटिश साम्राज्य, स्थानीय सूदखोरों एवं साहूकारों, बेईमान व्यापारियों, कर्मचारियों, अधिकारियों के विरुद्ध किए, जो कुचल दिए गए। इस मध्य अंग्रेजों और आदिवासियों के मध्य छोटे-छोटे संघर्ष होते रहे, जो कुशल नेतृत्व, संगठन और कुशल संचालन के अभाव में असफल रहे, लेकिन इस मध्य आदिवासियों के शोषण और निर्धन के विरुद्ध और अधिकारों हेतु किए जाने वाले संघर्ष की आग को तिलका मांझी और सिद्धू कान्हू जैसे जाने-माने संथाल आदिवासी क्रांतिकारियों ने सदैव जलाए रखा। इसके बावजूद यह संघर्ष वह आकार नहीं ले सका, जो बिरसा मुण्डा के नेतृत्व के चलते पाने में सफल हुआ। वर्ष 1894 में बिरसा ने तीर सम्भाला और आदिवासियों के संघर्ष को एक नई दिशा और प्रेरणा देने हेतु चलाया। वास्तव में, बिरसा आदिवासियों की परम्परागत जमीन पर जमींदारों द्वारा कब्जा किए जाने के घोर विरोधी थे। जमीनों पर कब्जे का परिणाम यह हुआ कि आदिवासी दिनों-दिन भूमिहीनों की पंक्ति में सम्मिलित होते जा रहे थे। उनके दैनिक जीवन, यहां तक कि खान-पान तक को प्रतिबन्धित कर दिया गया था। स्वावलम्बी होने का उन्हें कोई अधिकार ही नहीं था। पंचायत व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी। वह लोगों को समझाते थे कि छोटा-नागपुर हमारा है, हमारे पूर्वजों ने इसे बनाया है।' 1 अक्टूबर, 1894 को जंगल कानून के विरुद्ध आदिवासियों के विशाल जुलूस का नेतृत्व करते हुए बिरसा ने कहा था 'अंग्रेजों और जमींदारों को भगाओ। उनको जंगल की मालगुजारी मत दो।' 9 जनवरी, 1900 को डोम्बाबुरब में आदिवासियों का नेतृत्व करते हुए उन्होंने रांची के कमिश्नर फोरबोस तथा डिप्टी कमिश्नर स्टीटफील्ड से कहा था कि—**निया का होवा दाड़ि औआ, भारत आले का तना, आके पुण्डी सेथा को आकातना, आके नियति सेनों गिडी पै।'** ('यह नहीं हो सकता, भारत हमारा है, तुम सफेद कुत्तों का नहीं है। तुम लोग यहां से चले जाओ।') बिरसा के अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में आदिवासी महिलाओं ने अपने बच्चों को बाएं हाथ में उठाकर रखा और दाएं हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लोहा लिया था। इस संघर्ष में सैकड़ों अंग्रेज और आदिवासी हताहत हुए। बिरसा का क्रांतिकारी जीवन बहुत थोड़े समय का रहा और 9 जून, 1900 को रांची जेल में जहर देने से उनकी मृत्यु हो गई, लेकिन उनकी संघर्ष क्षमता, नेतृत्व और संगठन शक्ति का अंग्रेजों तक ने लोहा माना। इन्हीं विशेषताओं के चलते उन्हें 'दाउद मुण्डा', 'दाउद बिरसा', 'बिरसा भगवान' तथा 'धरती आवा' आज भी कहा जाता है।

ताना भगत आन्दोलन
(TANA BHAGAT MOVEMENT)

सरदारी लड़ाई और बिरसा आन्दोलन की असफलता से जनजातीय समाज में निराशा छा गई थी। अवसर पाते ही शोषक वर्ग ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया। अब भूमि विवाद पहले से भी अधिक बढ़ गए थे। बेगारी आम बात हो गई थी। इन दिनों अंग्रेज गवर्नर के आरामगाह के रूप में पलामू जिले में नेतरहाट को विकसित किया जा रहा था। आसपास के लोगों का इस्तेमाल इस कार्य हेतु जानवरों से बदतर रूप में काम लिया जा रहा था। इसी समय जतरा भगत एक कुशल नेतृत्व के रूप में सामने आया। आन्दोलन के जनक जतरा भगत का जन्म 1888 ई. में गुमला जिले के विशुनपुर प्रखण्ड में स्थित चिंगरी नावाटोली में हुआ था।

ताना भगतों को स्वतन्त्रता आन्दोलन केवल मातृभूमि की राजनीतिक मुक्ति का संघर्ष ही नहीं था, बल्कि पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था को तोड़कर नई न्यायपूर्ण व्यवस्था कायम करने की उनकी प्रबल आकांक्षा का भी प्रतीक था।

ताना भगत आन्दोलन की पृष्ठभूमि ब्रिटिश शासन काल की असन्तोषप्रद कृषि व्यवस्था के कारण तैयार हुई थी। परिणामस्वरूप एक नया धार्मिक आन्दोलन उरांवों द्वारा प्रारम्भ किया गया, जिसे 'कुरूखों' का धर्म कहा गया। इस नए मत के नेता ने अपने अनुयायियों को आश्वासन दिया कि धर्मेश की आराधना द्वारा वे अपनी वर्तमान क्षीण अवस्था को ऊंचा उठा सकते हैं। इसीलिए ताना भगत आन्दोलन का शुभारम्भ अप्रैल 1914 ई. में गुमला जिले के विशुनपुर प्रखण्ड के चिंगरी नावाटोली गांव के एक युवक जतरा भगत द्वारा

Scanned with OKEN Scanner

किया गया। जब जतरा भगत तथा अन्य जनजातीय पैगम्बरों ने बाद में चल कर इस सम्प्रदाय को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान करने का प्रयास किया।

जतरा भगत द्वारा आरम्भ किया गया यह आन्दोलन सम्पूर्ण उरांव-प्रदेश में जंगल की आग की तरह फैला। लोगों ने जमींदारों और अन्य गैर-आदिवासियों का काम करना बन्द कर दिया। अपने अनुयायियों को मजदूरी करने से रोकने के अपराध में जतरा भगत को उसके सात अनुयायियों के साथ गुमला के अनुमंडल पदाधिकारी की कचहरी में मुकदमा चलाने के लिए उपस्थित किया गया। 1916 ई. में जतरा भगत को एक वर्ष की सजा हुई और बाद में उसे इस शर्त पर छोड़ा गया कि वह अपने नए सिद्धान्तों का प्रचार नहीं करेगा और शान्ति बनाए रखेगा, किन्तु जेल में मिली घोर प्रताड़ना के फलस्वरूप जेल से बाहर आने के दो माह के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई। इस तरह, जतरा भगत नेपथ्य में चला गया, किन्तु उसका आन्दोलन फलता-फूलता रहा। रांची जिला के विभिन्न भागों में उसके किसी-न-किसी अनुयायी ने नेतृत्व संभाल लिया। नए विचारों और नई मानसिकता से सामाजिक परिवेश इतना अनुप्राणित हुआ कि आन्दोलन की प्रगति को अवरुद्ध करना कठिन हो गया।

1915 तक ताना भगत आन्दोलन रांची जिले के दक्षिण पश्चिमी भाग से पश्चिमी तथा मध्य भाग होते हुए उत्तरी भाग विशेषकर बेड़ों, कुडू तथा मांडल थाना क्षेत्र में फैल गया। यह आन्दोलन उत्तर में पलामू जिले तक फैल चुका था। ताना भगत आन्दोलन के पहले चरण में पुराने प्रेतों एवं देवताओं को अपनी जमीन से उखाड़ फेंका गया। इस आन्दोलन का मुख्य क्षेत्र घाघरा, बिशुनपुर, चैनपुर, कायडीह, सिसई, कुडू तथा मांडर के। मांडर क्षेत्र में इस आन्दोलन का नेतृत्व शिबू भगत के हाथ में था, जबकि घाघरा में बलराम भगत तथा बिशुनपुर में भिखू भगत ने इस आन्दोलन को सम्भाला। इस आन्दोलन ने देवमानिया नामक महिला ने भी सराहनीय भूमिका निबाही।

अनुयायियों के प्रति प्रेम तथा शुभ इच्छाएं, सभी जीवों के प्रति दया, आदतों तथा भोजन की शुद्धता ताना भगतों के प्रमुख संस्कार बन गए। रात्रि में इस नए धर्म के अनुयायियों के जमाव ने जमींदारों के बीच आतंक फैला दिया। बहुत-से ताना भगतों ने अपने जमींदारों को लगान देना बन्द कर दिया तथा उनकी जमीन जोतना बन्द कर दिया। इस प्रकार, स्थानीय जमींदार तथा सूदखोर अपने विरुद्ध उरांव लोगों को उभरते देखकर भयभीत हो गए तथा पुलिस में इस बात की सूचना दे दी।

1916 ई. के अन्त तक आन्दोलन रांची जिला के दक्षिणी-पश्चिमी भागों में पश्चिमी और मध्य भागों को लांघता हुआ उत्तरी भागों में फैल गया, विशेषतः बेड़ी, कुडु, मांडर थानों में। उत्तर की ओर यह पलामू जिला तक फैला। भगतों ने राजा के समक्ष चार प्रस्ताव रखे—(1) उन्हें स्वशासन प्रदान किया जाए। (2) राजा का पद समाप्त कर दिया जाए। (3) समानता स्थापित हो और (4) भूमि-कर समाप्त किया जाए, क्योंकि भूमि ईश्वर प्रदत्त है। राजा ने मांगों को ठुकरा दिया, जिससे टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। यह आन्दोलन सरगुजा में भी फैला, जहां ताना भगत का यह आन्दोलन दो चरणों से होकर गुजरा, पहला चरण परिष्कार और परिहार से सम्बद्ध था अर्थात् प्राचीन आत्माओं और बोंगाओं का विनाश और निष्कासन विशेषतः उनका जो केवल कष्ट पहुंचाते थे। पुरानी परम्पराओं और रीति-रिवाज का परित्याग विशेषतः उनका जिन्होंने आदिवासियों को अन्य लोगों से निम्नस्तरीय बना दिया था। दूसरा चरण था—आचरण-सम्बन्धी विशेष नियमों का निर्धारण और नए धर्म का संगठन और उसे निश्चित रूप देना। परिष्कार से सम्बद्ध पहले चरण में जादू-टोना और भूत-डायनों से सम्बद्ध मान्यताओं को समाप्त करना आवश्यक समझा गया। उरांवों को विश्वास है कि व्यक्ति और समाज का भविष्य अज्ञात शक्तियों पर आधारित है। ये अज्ञात शक्तियां मनुष्य के क्रियाकलापों को प्रभावित करती रहती हैं। यदि लोग इन शक्तियों को सन्तुष्ट रखते हैं, तो उन्हें लाभ होता है और यदि ये अज्ञात शक्तियां कुपित हो जाती हैं, तो बीमारी, मृत्यु और प्राकृतिक आपदाओं के रूप में कष्ट पहुंचाती हैं। अतः इन आत्माओं और बेगाओं को समय-समय पर बलि चढ़ाकर सन्तुष्ट रखना आवश्यक है। बलि और कर्मकाण्ड पर काफी व्यय होता था, जो उरांव के लिए भारी पड़ता था। जनजातियों का आर्थिक जीवन पहले से ही कष्टमय था। अब उन्हें जमींदारों को सेवाएं देनी पड़ती थीं और सरकार को कई प्रकार के कर देने पड़ते थे। 1820 से 1910 ई. तक कई बार उन्हें दुर्भिक्षों का सामना करना पड़ा। अल्पवृष्टि भी कष्टमय बना देती थी। सर्वाधिक प्रभावित भाग रांची जिला का पश्चिमी भाग था, जहां अधिकांश

Scanned with OKEN Scanner

जनसंख्या उरांवों की थी। अतः जब उरांव के अस्तित्व के लिए ही खतरा पैदा हो गया, तो स्वभावतः पुरानी देवी-देवताओं और पुरानी जीवन शैली में उनका विश्वास घटता गया। वे एक नए देवता की तलाश करने लगे, जो पुरानी देवी-देवताओं से अधिक शक्तिशाली हो और उनके कष्टों का निवारण कर सके।

दुरात्माओं और कष्टदायी देवी-देवताओं को निष्कासित करने के लिए ताना भगतों द्वारा किए गए उपाय लगभग उसी तरह के थे, जो उरांव मति द्वारा अपनाए जाते थे। उदाहरण के लिए, नाच-गाकर धर्मेश से प्रार्थना करना कि वह दुरात्माओं को निष्कासित कर दे। ऐसी प्रार्थना के समय ताना भगत तालियां बजाते थे और क्रमशः पैरों को उठाकर नाचते थे। कभी-कभी प्रार्थना करते हुए वे गोल-गोल घूमते थे, घुटनों के बल झुकते थे, हाथ मिलाने की मुद्रा अपनाते थे और तब दुरात्माओं तथा भूत-प्रेतों को भाग जाने का आदेश देते थे। भूत-प्रेतों और दुरात्माओं के निष्कासन के लिए ताना भगत गांव के बाहर किसी खुली जगह में एकत्रित होते थे, जहां वे तब तक गाते और प्रार्थना करते थे, जब तक उनमें से किसी एक में किसी दुरात्मा का प्रवेश न हो जाता था। ऐसा व्यक्ति दौड़कर एक जगह जाता था, जहां शेष सभी पहुंचते थे। इस जगह पर धर्मेश की प्रार्थना की जाती थी। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और सितारों का आह्वान किया जाता था। विशेष भक्ति से सम्पन्न व्यक्तियों, **जैसे**—बिरसा भगवान तक की प्रार्थना की जाती थी। मजे की बात यह थी कि 'जर्मन बाबा' का भी आह्वान किया जाता था, क्योंकि ताना परेशान कर सकते थे। उन दिनों जर्मनों की सफलता की चर्चा सर्वत्र हुआ करती थी और इन निरक्षर अज्ञानी, किन्तु धार्मिक दृष्टि से उत्साही भगतों ने जर्मन बाबा को एक अज्ञात, किन्तु शक्तिशाली देवता मान लिया। उनका विश्वास था कि अपने देवताओं के अतिरिक्त जर्मनों और हिन्दुओं के देवताओं की पूजा कर वे जमींदारों और साहूकारों के चंगुलों से निकल सकते थे।

ताना भगत हिन्दुओं और ईसाइयों की तुलना में अपनी गिरी हुई स्थिति से दुःखी थे। उनका विश्वास था कि उनकी दशा तभी सुधर सकती थी, जब वे ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर सकते। इसके लिए उन्होंने कुछ कर्मकाण्डों का आविष्कार किया और एक निश्चित आचार संहिता तैयार की। उनका कहना था सही कर्मकाण्ड वही हो सकता था, जो ईश्वर से सही सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसके लिए अपवित्र वस्तुओं का परित्याग कर शुद्ध जीवन-यापन आवश्यक था तभी ईश्वर से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था और सारे कष्टों से मुक्ति मिल सकती थी। उनकी आचार संहिता उरांव भगतों अर्थात् सोखाओं की आचारसंहिता से मिलती-जुलती है। भगत कर्मकाण्डों के माध्यम से धर्मेश से तादात्म्य स्थापित करता है, इसलिए वह शुद्ध जीवन अपनाता और धर्मेश के प्रति समर्पित रहता है। ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिए पूजन से पहले स्वयं शुद्ध होना आवश्यक है। मांस-भक्षण का परित्याग इसलिए आवश्यक है कि जीव ईश्वर की देन है, अतः पूजा और नैवेद्य अर्पण से पहले स्नान आवश्यक है। पूजन से पहले भोजन निषिद्ध है। पारम्परिक उरांव-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक धार्मिक समारोह में बलि, नैवेद्य और हड़िया का चढ़ाया जाना आवश्यक था, लेकिन ताना भगतों ने यह सब बन्द कर दिया। वह अपनी 'देवकुरी' (मन्दिर) में फूल-मिष्ठान्न चढ़ाने लगा और अगरबत्ती अथवा घी का दिया जलाने लगा। उसके लिए धर्म केवल भय के कारण देवताओं को सन्तुष्ट की प्रक्रिया नहीं है। यह प्रक्रिया तो हृदय में धर्मेश को बैठा लेने की प्रक्रिया है। यह धर्म, प्रेम, पूजा और श्रद्धा पर आधारित है। ताना भगत के लिए पूर्वजों की आत्मा के अतिरिक्त सभी आत्मा दुरात्मा हैं और इसलिए उनका परित्याग किया जाना चाहिए। वह केवल सर्वोच्च देवता धर्मेश में विश्वास करता है और उसकी अनन्त शक्ति का उपयोग स्वजनों की भलाई के लिए करता है। वह न तो स्वयं मदिरा का सेवन करता है और न मदिरा सेवन करने वालों के साथ बैठता है। वह स्वपाकी होता है और दूसरों के द्वारा पकाए गए अन्न से परहेज करता है। इस तरह, ताना भगतों की आचारसंहिता भी उरांव भगतों की आचार संहिता से बहुत भिन्न नहीं है।

ताना भगतों ने 'अखरा' में नृत्य, जतराओं में शिकार और घुमकुरिया का भी परित्याग कर दिया। वे न तो रंगीन वस्त्र पहनते थे और न किसी प्रकार का आभूषण धारण करते थे। उन्होंने 'गोदना' का भी परित्याग कर दिया। 'डाइनकुरी' और बेगाओं को बलि को भी निषिद्ध कर दिया गया, क्योंकि ईश्वर का निवास तो हृदय में है। यदि हम उनके गीतों और प्रार्थनाओं पर विचार करें, तो लगता है कि सब कुछ उनके अंतःकरण से निःसृत होता है। धर्मेश प्रेम और पवित्रता का प्रतीक है, जो न केवल सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है, बल्कि

व्यक्ति के हृदय में अवस्थित है। स्वजनों के प्रति प्रेम और सद्भावना सभी जीवों के प्रति दयाभाव, भोजन और आचरण की शुद्धता ताना भगतों को मध्यकालीन सन्त भक्तों की परम्परा में स्थापित करते जान पड़ते हैं।

रात्रिबेला में नए धर्म के इन अनुयायियों की बड़ी संख्या जगह-जगह एकत्रित होने लगी और सूर्योदय तक भूतप्रेतों के निष्कासन के अभियान चलने लगे, जिससे जमींदार आतंकित हो उठे। ताना भगतों ने जमींदारों को कर देना बन्द कर दिया और उनके खेतों की जुताई बन्द कर दी। अतः स्थानीय जमींदार और साहूकार ताना भगतों के सम्भावित विद्रोह से आतंकित हो उठे और उन्होंने पुलिस में इनकी शिकायत की। पुलिस के पदाधिकारी जो इनके गीतों और प्रार्थनाओं को समझते थे और न जिन्हें ताना भगतों के कर्मकाण्डों को देखने दिया जाता था, इन्हें विद्रोही समझने लगे और उनकी सभाओं को गैरकानूनी मानने लगे। उनकी सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाए गए और बहुतों को शान्ति भंग करने के नाम पर कचहरियों तक घसीटा गया। यह सब कुछ इस आन्दोलन को रोकने के लिए किया जा रहा था। यह आन्दोलन धीरे-धीरे स्वयं शिथिल पड़ता गया, क्योंकि नया धर्म भी भूमि-सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा में अक्षम सिद्ध हुआ। दूसरी ओर, सरकारी दमन का चक्र भी चलता रहा। ताना भगत धीरे-धीरे समझने लगे कि केवल धार्मिक आवेग के बल पर आन्दोलन को न तो लोकप्रिय बनाया जा सकता था और न जीवित रखा जा सकता था, इसके लिए एक राजनीतिक आधार की आवश्यकता थी।

इस आन्दोलन के तीसरे चरण के अन्तर्गत ताना भगतों ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। 1921 ई. में जब देशभर में महात्मा गांधी द्वारा 'नागरिक अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ किया गया, तो सिद्धू भगत के नेतृत्व में ताना भगत प्रथम बार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अहिंसात्मक आन्दोलन में शामिल हुए।

इस प्रकार, ताना भगत आन्दोलन जिसकी शुरुआत एक आर्थिक आन्दोलन के रूप में हुई थी, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ तादात्म्य स्थापित कर राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। 1922 ई. में ताना भगतों ने कांग्रेस के गया अधिवेशन में भाग लिया तथा वे उससे काफी प्रभावित हुए। इसके अतिरिक्त वे रामगढ़, नागपुर (1923) तथा लाहौर कांग्रेस सम्मेलनों में भी शामिल हुए। ताना भगतों ने चरखा चलाना, खादी वस्त्र धारण करना स्वीकार किया तथा इन लोगों ने विदेशी सामानों का बहिष्कार भी किया।

1930 में जब बारदोली में पहली बार कर न देने का अभियान प्रारम्भ किया गया, तो इससे ताना भगत भी प्रभावित हुए तथा सरकार को लगान का भुगतान करना बन्द कर दिया, जिसके फलस्वरूप जमींदारों द्वारा उनकी जमीनों की नीलामी कर दी गई और इनमें से अधिकांश भूमिहीन होकर बटाईदार या श्रमिक के रूप में जीवकोपार्जन के लिए विवश हो गए।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में ताना भगतों ने तन-मन-धन से हिस्सा लिया था। 1940 ई. में रामगढ़ में ताना भगतों ने महात्मा गांधी को 400 ₹ की थैली भेंट की थी। खद्दरधारी गांधी-टोपी पहने शंख एवं घंटी बजाते ताना भगतों की टोली गांधी जी को अत्यन्त प्रिय लगती थी। उन्होंने कहा भी था कि ताना भगत उनके सर्वाधिक प्रिय अनुयायी थे। 1930 ई. में जब बारदोली आन्दोलन शुरू हुआ था, तो ताना भगत भी इससे प्रभावित हुए और उन्होंने सरकार को कर देना बन्द कर दिया। यह सब कुछ उन्होंने तब किया, जब उनमें न तो कोई कांग्रेसी संगठन था और न किसी कांग्रेसी कार्यकर्त्ता ने उन्हें ऐसा करने का परामर्श दिया था। उन्होंने जग देखा कि सरदार पटेल ने बारदोली में कर न देने का अभियान छेड़ दिया है, तो इन्होंने स्वतः कर देना बन्द कर दिया। फलस्वरूप जमींदारों ने उनकी जमीन नीलाम कराई और आज भी अनेक भूमिहीन ताना भगत हैं, जो बटाईदारों अथवा कृषि-मजदूरों की तरह जी रहे हैं। सभी आपदाओं के बावजूद वे आज भी कांग्रेस के घोर समर्थक हैं। इन स्वतन्त्रता-सेनानियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया फिर भी आज तक उनकी सम्पूर्ण भूमि नहीं लौटाई गई, जब बिहार में 1937 ई. में कांग्रेस की सरकार बनी, तब ताना भगतों की जब्त जमीन को लौटाने की कोशिश अवश्य की गई, लेकिन यह प्रयास अपूर्ण सिद्ध हुआ। कालान्तर में, रीति-रिवाज में भिन्नता के कारण ताना भगतों में कई शाखाएं पनप गईं।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में ताना भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसमें हर क्षेत्र ने योगदान एवं बलिदान किया है।

Scanned with OKEN Scanner

जतरा भगत : एक परिचय

सुविख्यात ताना भगत-आन्दोलन के जनक जतरा भगत का जन्म 1888 ई. में गुमला जिले के विशुनपुर प्रखण्ड के अन्तर्गत चिंगरी नावाटोली में हुआ था। इनके पिता का नाम कोहरा भगत और माता का नाम लिबरी भगत था। बुधनी भगत इनकी पत्नी थी। जतरा भगत की जन्म-तिथि ठीक-ठीक ज्ञात नहीं, किन्तु आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को सामान्य मान्यता मिलने के कारण प्रत्येक वर्ष गांधी जयन्ती के दिन ही चिंगरी ग्राम में इनकी जयन्ती मनाई जाती है।

जतरा भगत नामक इस 25 वर्षीय युवक ने 1914 में घोषणा की कि उरांव लोगों के सर्वोच्च देवता धर्मेश ने उसे एक नए धर्म की स्थापना का आदेश दिया है। यह धर्म या आन्दोलन **ताना भगत** आन्दोलन के नाम से प्रचलित हुआ। धार्मिक आधार पर उरांव जनजाति को एकजुट कर जतरा उरांव ने अंग्रेजों के विरुद्ध संवैधानिक संघर्ष का रास्ता अपनाया। अहिंसावादी नेता जतरा भगत की आंखें खराब होने के बाद मृत्यु हो गई। ताना भगतों ने 1921 के गया कांग्रेस अधिवेशन तथा 1927 ई. में साइमन के खिलाफ अभियान में भी शामिल हुए।

कहा जाता है कि गुरु-ग्राम हेसराग के श्री तुरीया भगत से तन्त्र-मन्त्र की विद्या सीखने के क्रम में उन्हें 1914 ई. में अचानक आत्म-बोध हुआ। इन्होंने समझा कि यदि तन्त्र-मन्त्र से बड़ी-बड़ी बीमारियां ठीक हो सकती हैं, लोगों का आत्मविश्वास लौट सकता है, तो क्यों न इसके माध्यम से समाज में व्याप्त अत्याचार रूपी बीमारी को भी ठीक किया जाए। अंग्रेजी राज के अत्याचार, जमींदारों द्वारा बेगारी, समाज में फैले अन्धविश्वास एवं नाना प्रकार की कुरीतियों से पीड़ित आदिवासी समुदाय को सन्मार्ग दिखाने का संकल्प लेकर युवा जतरा उरांव अब जतरा भगत बन गया। इस तरह, ताना भगत-आन्दोलन की शुरुआत अप्रैल 1914 ई. में हुई। वस्तुतः ताना भगत उरांवों की यह शाखा है, जिसने कुड़खों के मूल धर्म कुडूख धर्म को अपना लिया है। 'ताना' शब्द का अर्थ है—तानना या खींचना। ताना भगत अपनी गिरी हुई स्थिति से खिन्न थे और इसमें परिवर्तन लाना चाहते थे। उन्होंने समझा कि अपनी स्थिति सुधारने का एकमात्र तरीका था। ईश्वर की आज्ञा मानना और उससे तादात्म्य स्थापित करना। ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करने का सही मार्ग था—सभी अपवित्र वस्तुओं का परित्याग और जीवन की शुद्धता। इसलिए उन्होंने उन सभी वस्तुओं का परित्याग कर दिया, जिन्हें वे अशुद्ध समझते थे और जादू-टोना का विरोध किया। उनका विश्वास था कि **धर्मेश** (ईश्वर) बराबर देखता है कि लोग उसकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं और उन वस्तुओं का वह विनाश करता है, जो लोगों को नुकसान पहुंचाती हैं। टाना भगतों की अधिकांश आबादी बिशुनपुर, घाघरा, गुमला, रायडीह, चैनपुर, पालकोट, सिसई, लापुंग, कुडू तथा मांडर में केन्द्रित है। इनकी कुल संख्या प्रायः दस हजार है, जो लगभग 150 परिवारों में विभक्त है।

जतरा भगत ने जब इस आन्दोलन को शुरू किया, तब वह मती (ओझा) का प्रशिक्षण ले रहा था। कहा जाता है कि एक रात वह जब प्रशिक्षण लेकर लौट रहा था, तब धर्मेश ने उसे दर्शन दिया और कहा कि वह मतिभाव सीखना बन्द कर दे और भूत-प्रेत तथा बलि इत्यादि में विश्वास करना छोड़ दे। वह मांस-मदिरा का परित्याग कर दे। खेतों में हल चलाना बन्द कर दे, क्योंकि इससे गायों-बैलों को केवल तकलीफ होती है और अकाल एवं गरीबी से भी छुटकारा नहीं मिलता है। जतरा ने लोगों से कहा कि ईश्वर नहीं चाहता कि लोग जमींदारों, अन्य धर्मावलम्बियों तथा गैर-आदिवासियों के यहां कुलियों एवं मजदूरों का काम करें। उसने घोषणा की कि ईश्वर ने उसे जनजातियों का नेतृत्व सौंपा है। उन्हें समझाने को कहा है कि वे धर्मेश की पूजा करें, क्योंकि इसी से उनकी इच्छाएं पूर्ण होंगी। इस तरह, उसने उन विचारों को व्यक्त किया, जो आदिवासियों के मानस को काफी समय से उद्वेलित कर रहे थे। दूसरे शब्दों में, उसने एक निश्चित जनजातीय धर्म स्थापित करने में लोगों की सहायता की।

प्रश्न

Scanned with OKEN Scanner